महाराजा हरिसिंह को उचित सम्मान कब मिलेगा

स्वतंत्र भारत की विकास यात्रा में 26-27 अक्टूबर की तिथियां किसी मील के पत्थर से कमतर नहीं है। 71 वर्ष पहले इन्हीं दिनों में जम्मू-कश्मीर रियायत का भारत में विलय हुआ था। इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम के दो मुख्य प्रतीक है, जिसमें पहले स्थान पर डोगरा राजवंश के अंतिम शासक दिवंगत महाराजा हरिसिंह है, तो दूसरा स्थान निर्विवाद रूप से शहीद ब्रिगेडियर राजिंदर सिंह को प्राप्त होगा।

जिस प्रकार सरदार पटेल की अवहेलना स्वतंत्र भारत में परिवारवाद से जकड़ी देश की सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी द्वारा आजतक की जा रही है, ठीक उसी प्रकार का व्यवहार स्वयंभू सेकुलरिस्ट महाराजा हरिसिंह के साथ भी कर रहे है। क्या इसका कारण उनका भी सरदार पटेल की भांति राष्ट्रवादी व्यक्तित्व और सनातन संस्कृति व बहुलतावादी परंपराओं का प्रतीक होना है ?

अपने स्वभाव के अनुरूप महाराजा हरि सिंह की नीतियां और तत्कालीन शासन-व्यवस्था का स्वरूप निष्पक्ष, उदार और सेकुलर था। 9 जुलाई 1931 को उन्होंने घोषणा करते हुए कहा था, 'रियासत के हर व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने की स्वतंत्रता है। किसी भी विशेष समुदाय या श्रेणी के व्यक्ति को सरकारी पदों पर अनुचित लाभ नहीं दिया जाएगा।'

महाराजा हरिसिंह ने वर्ष 1931 में अंग्रेजों द्वारा लंदन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन में अपने सच्चे राष्ट्रवादी होने प्रमाण दे दिया था। अंग्रेज इसके माध्यम से भारत में भिन्न-भिन्न रियासतों के महाराजाओं, राजाओं और नवाबों को स्वतंत्रता आंदोलन से अलग करना चाहते थे। परंतु महाराजा हरिसिंह भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में खड़े हो गए। यही कारण था कि महाराजा हरि सिंह ब्रितानियों की आंख का कांटा बन गए।

जब महाराजा हरिसिंह पंथनिरपेक्ष व्यवस्था के पक्षधर, राष्ट्रभक्त और भारत को औपनिवेशिक साम्राज्य मुक्त बनाने के धुर समर्थक थे, तब उन्होंने 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता के बाद भारत की नई प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल होने के लिए 72 दिनों का समय क्यों लिया- इसके मुख्य दो कारण थे।

पहला- वह जानते थे कि विलय के बाद पं.नेहरु उनसे व्यक्तिगत खुन्नस के कारण घोर सांप्रदायिक शेख अब्दुल्ला को जम्मू-कश्मीर की सत्ता सौंप देंगे (30 अक्टूबर 1947 को ऐसा हुआ भी), जो रियासत की तत्कालीन पंथनिरपेक्ष और बहुलतावादी शासकीय व्यवस्था को जमींदोज करना चाहते थे। महाराजा की यह आशंका स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पश्चात सही भी साबित हुई। जब शेख अब्दुल्ला बतौर मुख्यमंत्री अलगाववादी रंग दिखाने लगे, तब 8 अगस्त 1953 को उनके मित्र और विश्वासपात्र तत्कालीन

प्रधानमंत्री पं.नेहरु ने स्वयं उन्हे बर्खास्त कर जेल भेज दिया।

दूसरा कारण यह था कि उस कालखंड में शेष भारत से जम्मू-कश्मीर आने-जाने के सभी रास्ते पाकिस्तान के लाहौर, रावलपिंडी, सियालकोट और पेशावर से जुड़ते थे। यही से रियासत के लोगों तक अन्न, ईंधन सहित अन्य आवश्यक वस्तुएं पहुंचती थी। जब महाराजा हरिसिंह ने पाकिस्तान को झटका देते हुए विलय करने से मना कर दिया, तब इसका लाभ उठाते हुए मोहम्मद अली जिन्नाह ने सितंबर 1947 को आर्थिक और संचार नाकेबंदी कर दी।

जब महाराजा हरिसिंह अंग्रेजों की आंख में चुभने लगे, तब 1931 के उसी कालखंड में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विषाक्त वातावरण से शिक्षा ग्रहण कर शेख अब्दुल्ला वापस कश्मीर लौटे थे। शेख ने महाराजा को सामंतवादी और मुस्लिम विरोधी बताकर सांप्रदायिक आंदोलन छेड़ दिया। उनकी मांग थी कि नौकरियों में मुस्लिमों को अधिक प्राथमिकता दी जाएं।

मई 1946 में शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह के खिलाफ जिस 'कश्मीर छोड़ो आंदोलन' शुरू किया, उसका मूल चरित्र हिंदू (डोगरा) विरोधी था। जब 20 मई को मुजफ्फराबाद में उन्हे उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया, तब सरदार पटेल के विरोध के बावजूद पं.नेहरू ने महाराजा को पत्र लिखकर शेख को रिहा करने की मांग की और जम्मू-कश्मीर जाकर शेख की पैरवी करने की घोषणा कर दी। महाराजा की अनुमति के बिना जब नेहरू श्रीनगर पहुंचने का प्रयास कर रहे थे, तब बीच रास्ते में ही उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। इसी घटना से उपजी पं.नेहरू की व्यक्तिगत खुन्नस, झुंझलाहट और जिद ने न केवल स्वतंत्र भारत में जम्मू-कश्मीर के विलय में विलंब का खाका खींचा, अपितु देश की सुरक्षा को भी अनंतकाल के लिए गर्त में पहुंचा दिया।

हैदराबाद और जूनागढ़ रियासत- जिनके तत्कालीन शासक मुस्लिम थे, उन्हे सैन्य शक्ति और सरदार पटेल की दूरदर्शी सोच के बल पर भारत में मिला लिया गया था। परंतु जम्मू-कश्मीर का मामला पं.नेहरू ने अपने पास रखा। इसी बीच कश्मीर को हड़पने के लिए 22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान की नियमित सेना और सादी वर्दी में हजारों कबाइलियों ने आक्रमण कर दिया। ये कबाइली मुजफ्फराबाद में आक्रमण करते हुए बारामूला की ओर बढ़ने लगे। यहीं रियासती मुस्लिम बहुल सैन्य टुकड़ियों ने मजहबी जुनून में अपने अधिकारियों (अधिकतर हिंदू) की रात में हत्या कर दी और हथियार लूटकर शत्रुओं से जा मिले। महाराजा ने अपने सेनापति बिग्रेडियर राजिंदर सिंह को शत्रुओं का सामना करने के लिए भेजा।

बिग्रेडियर राजिंदर सिंह ने श्रीनगर से 112 किलोमीटर दूर दोमेल की चोटियों पर मोर्चा जमाया। परंतु दोमेल हाथ से निकल गया और शत्रु सेनाएं आगे बढ़ गईं। यहां से 16 किलोमीटर दूर गढ़ी में अगला मुकाबला हुआ। शत्रु के साथ तीसरा मोर्चा उड़ी में लिया। लक्ष्य था कि हमलावर सेना को जितना हो सके- श्रीनगर की ओर बढ़ने से रोका जाएं। उन्होंने शत्रु सेना को पहले महोरा की ओर, फिर रामपत (झेलम घाटी सड़क) की ओर खदेड़ा। कई घंटों तक ब्रिगेडियर राजिंदर सिंह ने उड़ी के पास 'अंतिम गोली, अंतिम जवान' तक शत्रुओं का मुकाबला किया और अंत में वीरगति को प्राप्त हुए। भारतीय सेना का पहला सर्वोच्च शौर्य सैन्य सम्मान किसी भारतीय सैनिक को न देकर शहीद राजिंदर सिंह मरणोपरांत

दिया गया।

किसी भी देश की सुरक्षा और सामरिक रणनीति की दृष्टि से इससे बड़ी भूल और भला क्या हो सकती है कि सेना के बढ़ते कदम को रोककर और राजनीतिक नेतृत्व पीठ दिखाकर अपने ही भूभाग के एक हिस्से को शत्रु के हवाले कर देती है। यही क्षेत्र- आज गुलाम कश्मीर अर्थात पी.ओ.के. कहलाता है, जिसे हम आजतक मुक्त नहीं करवा सके। इसके अतिरिक्त कश्मीर मामले को संयुक्त राष्ट्र ले जाना, जनमत संग्रह की घोषणा और अनुच्छेद 370 को लागू करना- प्रारंभिक राजनीतिक-अधिष्ठानों के वह विवेकशून्य फैसले थे, जिसने जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक विलय की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करने के साथ मुस्लिम अलगाववाद, इस्लामी कट्टरपंथ, जिहाद और हिंदू-विहिन घाटी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मैं अपने व्यक्तिगत अनभुव से दावा करता हूं कि 1980-90 दशक में कश्मीरी पंडितों के दमन संबंधी खबरों को सार्वजनिक विमर्श में उचित स्थान नहीं दिया गया था।

दिल्ली से प्रकाशित हो रहे एक बहु-संस्करण दैनिक के समूह में लगभग तीन दशक पहले मैं बतौर वरिष्ठ पत्रकार कार्यरत था। उस समय हमारे एक सहयोगी चंद्रभूषण कौल ने कश्मीर से हिंदुओं के उत्पीड़न और मंदिरों को तोड़े जाने की खबर फाइल की, जिसे तत्कालीन संपादक बी.जी. वर्गीज ने छापने से इनकार कर दिया। यहां तक, उस समूह में हिंदी दैनिक के संपादक प्रभाष जोशी ने भी उस खबर को नहीं छापा।

जब मैंने कौल की खबर का विशलेषण करते हुए उस समूह के अन्य संस्करण में रिपोर्ट प्रकाशित की, तब शीर्ष अधिकारियों ने न केवल मेरा विरोध किया, साथ ही मेरा नाम उद्धृत करते हुए और आलेख छापकर उस सच को हमेशा के लिए दबा दिया। यदि चंद्रभूषण कौल की खबर को उस समय महत्व मिल जाता, तो संभवत : 1980-90 के दशक में हिंदुओं के दर्जनों मंदिरों-पूजा स्थलों को जिहादियों और आतंकियों द्वारा तोड़ा नहीं जाता और पांच लाख कश्मीरी पंडित अपने मूल स्थान से पलायन के लिए मजबूर नहीं होते।

गुजरात में नर्मदा नदी के पास सरदार पटेल स्मारक के रूप में उनकी विश्व की सबसे ऊंची 182 मीटर (597 फीट) की मूर्ति स्थापित की गई है, जिसका औपचारिक उद्घाटन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 31 अक्टूबर को पटेल की 144वीं जयंती पर करेंगे। अब मुझे उस दिन की प्रतीक्षा है, जब श्रीनगर के लालचौक पर भारत माता के लाल महाराजा हरिसिंह की भव्य मूर्ति स्थापित कर उन्हे भावभीनी श्रद्धांजलि दी जाएगी।

लेखक बलवीर पुंज वरिष्ठ पत्रकार हैं और राष्ट्रवादी विषयों पर लिखते हैं

साभार- https://www.nayaindia.com/ से